अखिल भारत विवेकानन्द युवा महामण्डल के अध्यक्ष श्री नवनीहरण मुखोपाध्याय द्वारा बसंतपुर (प0 बंगाल) में आयोजित 43 वें वार्षिक युवा प्रशिक्षण शिविर में 30 दिसम्बर, 2009 को विदाई सत्र में दिये गये भाषण :

स्वामीजी ने युवाओं को जितने भी परामर्श दिये या युवा वर्ग से वे जिस बात की अपेक्षा रखते थे, उसके सार को हमलोगों ने यहाँ बार-बार सुना है। उनके अनुसार अपने चरित्र को सुन्दर ढंग से गठित कर लेना ही युवाओं का एकमात्र कर्त्तव्य है। केवल मनुष्य की आकृति प्राप्त कर लेने से ही कोई 'मनुष्य' नहीं हो जाता है, बल्कि चरित्र से ही यथार्थ मनुष्य बनता है।

भारत में करीब डेढ़ हजार वर्ष पहले एक राजा थे – भर्तृहरि। इनका प्रारंभिक जीवन ठीक नहीं था। ये बड़े ही बुरे ढंग से जीवन-यापन करते थे, बड़े ही बुरे ढंग से। यौवनकाल में वे अत्यंत ही भोग-विलासपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। और इसी भोग को ही परम आनन्द मानकर उन्होंने 100 संस्कृत श्लोकों की रचना की थी, नाम था – 'श्रृंगार-शतकम्'। इस श्रृंगार-शतक में बस केवल श्रृंगार-रस ही भरा हुआ था। क्योंकि इसकी रचना करते समय तक उनके मन में 'विवेक शक्ति' का उदय नहीं हुआ था। लेकिन धीरे-धीरे व्यावहारिक जीवन अनुभव प्राप्त करने से उनमें नीतिबोध जाग्रत हुआ। तब उन्होंने योग्य राजा के लिये उपयोगी 100 संस्कृत श्लोकों की रचना की, जिसका नाम हुआ 'नीतिशतकम्'। मन में नीति का बोध जाग्रत होने से बाद में वैराग्य का भाव भी उत्पन्न हो गया।

वैसे, यह श्रृंगार का भाव बीज रूप में सभी में रहता है। और, वह बीज वृक्ष के रूप में परिणत होने से पूर्व ही अनेकों युवाओं के जीवन को बिल्कुल ही नष्ट कर देता है। जो युवा नैतिकता के महत्व को समझकर, उसे आचरण में उतारना चाहते हैं, वे श्रृंगार वाले भाव का त्याग कर देते हैं। नीति से जीवन गठन होता है। इसी से हम यथार्थ मनुष्य में परिणत हो पाते हैं। इसके बाद है – वैराग्य। वैराग्य का अर्थ घर से निकल कर जंगल में चले जाना और साधु बन जाना ही नहीं है। घर-गृहस्थी में रहते हुए भी वैराग्य में सुप्रतिष्ठित एक दो नहीं बल्कि कई लोगों को देखने का सौभाग्य मुझे इस जीवन में प्राप्त हुआ है। घर-गृहस्थी में रहते हुए परिवार के सदस्यों, सगे-संबंधियों एवं पास-पड़ोस में रहने वाले लोगों के साथ यथायोग्य व्यवहार करते हुए भी त्याग, वैराग्य के भाव में सुप्रतिष्ठित रहा जा सकता है।

'नीतिशतक' में भर्तृहरि कहते हैं कि श्रृंगार के चक्कर में पड़कर युवाओं का बहुमूल्य समय नष्ट हो जाता है, उनका चरित्र सुन्दर ढंग से गठित नहीं हो पाता है, वे यथार्थ मनुष्य बनने के लक्ष्य से भटक जाते हैं । इसीलिये हमें इसका त्याग करना चाहिये, इसमें नहीं रहना चाहिये।

हमें इससे बाहर निकलना होगा, नीतिबोध में जाग्रत होना होगा। श्रृंगार के आकर्षण से बाहर निकलने का मार्ग बतलाते हुए वे कहते हैं –

वरं तुंगात् श्रृंगात् ननू शिखरिणः क्वापिविषमे
पतित्वायं कायः कठिनदृशदान्तर्विदलितः।
वरं हस्तो नस्तः फणिपतिमुखे तीव्रदंशने
अग्नौ पातः तदपि न कृतः शीलविलयः।।

यदि तुम श्रृंगार के आकर्षण से स्वयं को मुक्त करने में या स्थिति को संभालने में असमर्थ हो और चरित्रवान मनुष्य बनना तुमसे संभव नहीं हो पाता हो, तो इससे अच्छा है कि तुम ऊँचे पहाड़ से छलाँग लगा दो, जिससे तुम्हारे शरीर टुकड़े-टुकड़े हो जाएँ, क्योंकि चरित्रहीन होने की अपेक्षा ऊँचे पहाड़ से छलाँग लगाकर मर जाना अच्छा है या आग में डालकर अपने हाथों को जला लेना अच्छा है । किन्तु किसी भी स्थिति में अपने चरित्र को गिरने नहीं देना। यदि तुमने चरित्र गठन नहीं किया तो तुमसे देश की सेवा का कोई भी कार्य सुचारू ढंग से नहीं हो पायेगा। यह वाणी युगों से ही भारत को सुनाया गया था।

स्वामी विवेकानन्द ने भी पूरे पाश्चात्य जगत् को भारत की इसी प्राचीन शिक्षा को अपने ढंग से अंग्रेजी में सुनाया था। किन्तु, उत्तर भारत की यात्रा के समय में उन्होंने हिन्दी में भी व्याख्यान दिया था। और एक बात, मैं अपने हिन्दी भाषी भाईयों से कहना चाहूँगा, शायद आप इसे नहीं जानते होंगे या हो सकता है किसी-किसी ने इसे सुना भी हो – आज जो भारत भर में हिन्दी में व्याख्यान देने की परम्परा चल पड़ी है, उसका प्रारंभ स्वामी विवेकानन्द ने ही की थी।

शायद आपको हिन्दी में व्याख्यान देने की परम्परा का इतिहास पूर्णतः ज्ञात न हो, क्योंकि इतिहासकार लोग भाषा के विषय में इतना विस्तृत इतिहास नहीं लिखते हैं। आमतौर पर इतिहास में राजा, उसकी न्याय प्रणाली, शासन व्यवस्था आदि के विषय में लिखा जाता है। लेकिन उस समय की सामाजिक परिस्थितियों पर, छोटी-छोटी cultural गतिविधियों पर विस्तार से कुछ भी लिखा हुआ मिल पाना मुश्किल है। स्वामी विवेकानन्द जब पाश्चात्य की यात्रा से लौटे तो पहले सिंहल प्रान्त गये थे – कोलम्बो। फिर भारत आकर मद्रास से होते हुए हिमालय तक चले गये थे। *Columbo to Almora* नामक पुस्तक में उनके इन व्याख्यानों को संकलित किया गया है – ऐसा अद्‌भुत व्याख्यान और कहीं नहीं मिलेगा। उन्हीं व्याख्यानों के माध्यम से ही उन्होंने भारत को बतलाया कि अपने पुनरूत्थान के लिये उसे क्या करना चाहिये। इसी क्रम में वे कुछ दिन अल्मोड़ा में ठहरे और विश्राम किये। लोग उन्हें देखने आते और उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होते।

अल्मोड़ा में रहते समय उन्होंने अंग्रेजी में व्याख्यान दिया था। उनके व्याख्यान का अंग्रेजी पढ़े-लिखे स्थानीय लोगों पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा था। वे स्वामीजी से विनती करने लगे कि "स्वामीजी, यहाँ बहुत कम लोग ही अंग्रेजी समझते हैं, वे हमसे पूछते हैं कि स्वामीजी ने क्या कहा, तो हम उन्हें थोड़ा-बहुत बतलाते भी हैं। किन्तु, आपके जैसा तो नहीं ही बता सकते। इसीलिये यदि आप हिन्दी में व्याख्यान देते तो आम जनता को बहुत लाभ होता।" किन्तु, उस समय तक समाज में संस्कृत के पंडितों का इतना प्रभाव था कि हिन्दी में व्याख्यान नहीं दिया जा सकता था। यदि कहीं जनसभा में व्याख्यान होगा तो वह संस्कृत में ही होगा। उस समय तक संस्कृत के पंडित लोग समाज के उपर इतना वर्चस्व रखते थे कि उनके गलत निर्णयों को भी पूरा समाज शिरोधार्य कर लेता था। उसी प्रकार से हिन्दी में व्याख्यान की पाबंदी को भी समाज ने स्वीकार कर लिया था। उन पंडितों में कुछ महान गुण के साथ-साथ कुछ दोष भी थे। खैर, बहुत अनुनय-विनय करने पर स्वामीजी ने हिन्दी में व्याख्यान देना स्वीकार कर लिया। एक स्कूल में व्याख्यान की व्यवस्था की गई । लेकिन स्वामीजी ने इससे पूर्व कभी भी हिन्दी में व्याख्यान नहीं दिया था, पर हिन्दी समझते अवश्य थे। भारत में रहने वाले सभी लोग थोड़ा-बहुत हिन्दी अवश्य समझ लेते हैं, पर अधिकांश गैर हिन्दी प्रदेश के लोगों को धारा प्रवाह हिन्दी बोलने में कठिनाई होती है। पर जब स्वामीजी ने हिन्दी में भारत की प्राचीन शिक्षाओं को आम जनता के सामने रखा तो वहाँ के लोग बहुत खुश हुए, बहुत खुश! वे कहने लगे – अहा! ऐसे-ऐसे श्रेष्ठ विचार हमारे भारत में सदियों से प्रचलित हैं। किन्तु, लोकभाषा में न रहने के कारण अधिकांश लोग उन शिक्षाओं से वंचित रह जाते हैं। अब वे ही लोग अपने को धन्य मान रहे थे। और जिस दिन व्याख्यान हुआ था, उसके दो दिन बाद 29 जुलाई 1897 ई0 को स्वामीजी स्वामी रामकृष्णानन्दजी को बहुत ही आनन्द पूर्वक सूचित करते हैं कि – देखो, देखो, मुझसे हिन्दी में व्याख्यान देना संभव हो गया। और वहाँ के हिन्दी भाषी लोग उनकी हिन्दी व्याख्यान सुनकर बहुत प्रसन्न हुए थे। तो इस प्रकार से स्वामीजी द्वारा हिन्दी में व्याख्यान देने का मिसाल पेश करने के बाद अन्य जगहों पर भी हिन्दी में व्याख्यान देने का प्रचलन हो गया। तथा, पंडितों ने भी यह स्वीकार कर लिया कि हिन्दी में व्याख्यान दिया जा सकता है। इसके पहले हिन्दी में व्याख्यान नहीं होता था। संस्कृत के अलावा कहीं-कहीं English में होता था, किन्तु हिन्दी में तो बिल्कुल नहीं होता था।

हिन्दी भाषा मुझे भी बहुत प्रिय है, हालाँकि मैं इस भाषा को बहुत अच्छी तरह से नहीं जानता हूँ। पर यह भाषा बड़ी मीठी है तथा भारत के सभी प्रान्तों के लोग हिन्दी समझ सकते हैं। We see some people to pretend they don't follow Hindi, but I have never found a single person who does not follow, if somebody says something in Hindi. हिन्दी सभी समझते हैं, अतः इसको ही भारत का *Lingua Franca* (सम्पर्क भाषा) कहा जा सकता है। अतः राष्ट्रभाषा का यह सम्मान हिन्दी को छोड़ अन्य किसी भी भाषा को नहीं दिया जा सकता है। हिन्दी के अलावा अंग्रेजी, मराठी, बंगला या अन्य कोई भी भाषा भारत की राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती। भारत के किसी भी प्रान्त में जाइये, हिन्दी में बात करने से काम चल जायेगा।

मैं एकबार दक्षिण भारत गया था। वहाँ बहुत स्थानों पर घूमा। वहाँ मेरे साथ एक वरिष्ठ साधु भी थे। मेरी बहुत इच्छा हुई कि दक्षिण भारत आया हूँ तो शंकराचार्य के जन्मस्थान को भी देख लूँ। लेकिन मेरे बहुत कहने पर भी कोई मेरे साथ चलने को तैयार नहीं हुआ। उस समय मैं किस शहर में था अब याद नहीं, पर किसी के तैयार नहीं होने पर मैं अकेला ही चल पड़ा। वहाँ कालडी में शंकराचार्य

के जीवन से जुड़ी हुई पूर्णा नदी (अलवाई नदी) को देखकर मैं शंकराचार्य जी की स्मृति से अभिभूत हो गया और नदी में करीब 15-20 फीट की ऊँचाई से छलाँग लगा बैठा। लोग चिल्लाते हुए दौड़ पड़े – "ये क्या कर रहे हो ! यह बहुत ही खतरनाक है ! ऐसा करने से जान भी जा सकती है !" देखिये, उस सुदूर दक्षिण में भी लोगों ने मुझसे हिन्दी में ही बात की। यह है हिन्दी !

नदी की बात निकली है तो एक बात और याद आ गई। जिन्होंने शंकराचार्य जी की जीवनी पढ़ी है वे जानते हैं कि उनकी माता जी को प्रतिदिन नदी में नहाने का अभ्यास था। लेकिन नदी उनके घर से थोड़ी दूरी पर बहती थी। शंकराचार्य जी को लगा दूर जाकर नदी में नहाने से माँ को बहुत कष्ट होता है । यदि नदी थोड़ी नजदीक आ जाती तो माँ को आसानी हो जाती। तब शंकराचार्य ने प्रार्थना की – "हे नदी माता, यदि तुम मेरे घर के निकट आ जाती तो अच्छा होता, मेरी माँ को तुम्हारे जल में स्नान करना अच्छा लगता है।" और ऐसा कहा जाता है कि नदी पास में आ गई थी। There is another instance, श्रीरामकृष्ण के एक भक्त थे – नाग महाशय, वे पूर्वी बंगाल में रहते थे। उनकी कुटिया से कुछ दूरी पर पद्मा नदी बहती थी। ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने भी शंकराचार्य की तरह प्रार्थना की और नदी सचमुच उनकी कुटिया के नजदीक आ गई थी।

वैसे नदियाँ अक्सर अपने प्रचलित मार्गों को त्याग कर नये-नये मार्गों से बहने लगती हैं। परन्तु, वहाँ के लोगों का यही विश्वास है कि नदी भी प्रार्थना के कारण ही वृद्धा माँ के घर के निकट से बहने लगी थी। ऐसे एक-दो उदाहरण भी मिल जाते हैं।

मैंने आपका बहुत समय ले लिया। मैं अपना प्रेम आप सभी को देता हूँ। वैसे देना-लेना कुछ नहीं होता। क्यों जानते हो भाईयों, तुमलोग और यहाँ जो बैठकर बोल रहा है, एक ही हैं – बिल्कुल एक। शरीर अलग-अलग है, किन्तु भीतर एक ही वस्तु है। जगत् में अनेक प्राणी हैं, पर उनमें सबसे महान मनुष्य को ही क्यों कहा जाता है ? इसलिये क्योंकि मनुष्य ही जगत् को उसके यथार्थ स्वरूप में जान सकता है। इस जगत् का जो सार वस्तु है, उसे ब्रह्म कहा जाता है। इसी ब्रह्म से ही सबकुछ आया है और वहीं सबकुछ लौट जाता है। वही ब्रह्म सबके भीतर में है, इसीलिये बाहरी तौर पर अलग-अलग होते हुए भी हम भीतर से एक हैं। विभिन्नता के भीतर ही एकत्व भी है। मेरी शुभकामनाएँ आपके पास पहुँचे। मेरा हार्दिक प्रेम लो, भाई। तुम सब अपना जीवन सुन्दर रूप से बनाओ। इस सुन्दर जीवन को राष्ट्रमाता की सेवा में न्यौछावर कर दो और दुःखी मनुष्यों के आँसू पोंछने का प्रयास करो। उन्हें भोजन मिल सके, विद्या प्राप्त हो सके, सुख किसे कहते हैं, इसी जीवन में उन्हें इसका कुछ अनुभव हो सके, इसकी व्यवस्था करो। भगवान श्रीरामकृष्ण, जगन्माता सारदा देवी एवं जगत्बंधु स्वामी विवेकानन्द के पास मेरी यही प्रार्थना है।